© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Education

भारत में संघीय संविद सरकारों की प्रवृत्तियाँ एवं प्रभाव

डॉ० विकास चन्द्र वशिष्ठ

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, मेरठ कॉलेज, मेरठ

प्रस्तावना:

"सामान्यतया यह सोचा जाता है कि द्विदलीय व्यवस्था में एक दलीय सरकार में किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने के कारण मिली–जुली सरकार का गठन करना होगा। भारत लम्बे समय तक इस सामान्य नियम का अपवाद रहा है और इस स्थिति का कारण था, भारत की बहुदलीय व्यवस्था में एक राजनीतिक दल को प्रधानता की स्थिति प्राप्त होना"[1], किन्तु भारतीय राजनीति में वर्ष 1967 से एक क्रांतिकारी परिवर्तन आया और इसी वर्ष केन्द्र में तो नहीं बल्कि देश के आठ राज्यों में संविद सरकारों का गठन हुआ। देश में पहली संघीय संविद सरकार का गठन 24 मार्च, 1977 को मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी द्वारा किया गया, किन्तु केन्द्र में वर्ष 1989 से मिली–जुली सरकारों के गठन करने की जो प्रक्रिया शुरु हुई वह अभी तक चल रही है। केन्द्र में अब तक नौ संविद सरकारों की रचना हुई है। यदि गहराई से अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि वर्ष 1991 में एक गठित पी०वी० नरसिंहराव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार भी किसी न किसी के रूप में संविद सरकार ही थी, क्योंकि वर्ष 1991 में लोकसभा के चुनावों में किसी भी राजनीतिक दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। सबसे अधिक स्थान कांग्रेस को प्राप्त हुए। "कांग्रेस को 220 स्थान मिले और अल्पमत में होने के बाद भी उसने नरसिंहराव के नेतृत्व में सरकार का निर्माण किया।"[2]

"राष्ट्रपति ने कांग्रेस पार्टी जोकि सबसे बड़ी पार्टी थी के नेता पी०वी० नरसिंहराव को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया और उन्हें एक माह के अन्दर अपना बहुमत सिद्ध करने को कहा। 22 जून, 1991 को नरसिंहराव ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। 16 जुलाई

को राव की अल्पमत सरकार ने लोकसभा में बहुमत प्राप्त किया, जबकि 112 सदस्य अनुपस्थित रहे, परन्तु बाद में राव ने लोकसभा में अन्य राजनीतिक दलों के कई सदस्यों को कांग्रेस में सम्मिलित करके अपना बहुमत बना लिया।"[3]

प्रवृत्तियाँ– सभी संघीय संविद सरकरों के गुण अनेक बातों में एक–दूसरे से मेल खाते हैं। यही गुण संघीय संविद सरकारों की प्रवृत्तियों में परिवर्तित हो गये हैं। इनकी प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं–

1. सत्ता प्राप्त करने की होड़–

संघीय संविद सरकारों का अवलोकन करने से यह तथ्य प्रकाश में आया कि गठबंधन राजनीतिक दलों द्वारा सत्ता प्राप्त करने के लिए किये गये। गठबंधन में शामिल दलों का उद्देश्य देशहित नहीं रहा है, बल्कि येन केन प्रकारेण सत्ता पर कब्जा करना रहा है। इसका स्पष्ट उदाहरण पहली जनता पार्टी की सरकार में ही देखने को मिला। सत्ता प्राप्त करने की होड़ में तत्कालीन उपप्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने दल बदल करके अपनी सरकार बनाई।

जैसा कि स्पष्ट है– "जनता पार्टी सरकार के उपप्रधानमंत्री चरण सिंह और उनके समर्थकों द्वारा दल बदलकर कर लिये जाने और कांग्रेस (इ) द्वारा चरण सिंह सरकार को बाहर से समर्थन दिये जाने की घोषणा के आधार पर 28 जुलाई, 79 को चरण सिंह सरकार ने पद ग्रहण किया।"[4]

सत्ता प्राप्त करने की होड़ के कारण ही चन्द्रशेखर जनता दल में अलग हुए और उन्होंने नया जनता समाजवादी दल के नाम से संगठन बनाया। "कांग्रेस (इ) ने जनता 'एस' की सरकार को बाहर से समर्थन देने की घोषणा की और चन्द्रशेखर ने कुछ छोटे राजनीतिक दलों को साथ लेकर एक मिली–जुली सरकार का गठन किया।"[5]

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि क्या चन्द्रशेखर यह नहीं जानते थे कि बाहर से समर्थन वाली पूर्व दो सरकारों का किस तरह पतन हुआ? तो फिर उन्होंने कांग्रेस को सरकार में शामिल होने के लिए राजी क्यों नहीं किया? यह इसका सीधा अर्थ यही निकाला जा सकता है कि चन्द्रशेखर यह जानते हुए भी कि उनकी सरकार का अस्तित्व भी अनिश्चित है, सत्ता प्राप्त करने की होड़ में सरकार बना बैठे।

2. राजनीतिक स्वार्थपरता एवं अवसरवादिता–

संघीय संविद सरकारों की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति राजनीतिक स्वार्थपरता एवं अवसरवादिता रही है। गठबंधन सरकारों का निर्माण राजनीतिक दलों द्वारा अपनी स्वार्थपरता और राजनीतिक अवसरवादिता के कारण किया जाता है। इसी राजनीतिक अवसरवादिता और स्वार्थपरता के साथ–साथ शक्ति की भूख ने संविद सरकारों का निर्माण राजनीतिक दलों के लिए गुड्डा–गुड़ियों का खेल बना दिया। जब मूड हुआ तो सरकार को समर्थन दे दिया। जब मन आया तो अपन समर्थन वापस ले लिया। अन्नाद्रमुक नेता जयराम जयललिता ने मार्च 1998 में भाजपा गठबंधन वाली सरकार को अपना समर्थन दिया तथा बाद में सरकार में शामिल भी हुई। इसने सरकार को नाकों चने चबा दिये। बार–बार समर्थन वापस लेने की धमकी के कारण सरकार सही ढंग से अपना कार्य नहीं कर सकी। वह सरकार से अपना राजनीतिक हित और अवसर का पूरा फायदा लेना चाहती थी। जैसा कि स्पष्ट है– "1998 की भाजपा सरकार में ए०डी०एम० के सबसे बड़ा घटक दल था। सरकार बनने के कुछ ही दिनों बाद से दल की नेता जयल० के सबसे बड़ा घटक दल था। सरकार बनने के कुछ ही दिनों बाद से दल की नेता जयललिता ने विभिन्न प्रकार की मांगों को लेकर सरकार पर अपना दबाव बनाना शुरू किया, जिसमें तमिलनाडु की डी०एम०के० सरकार को भंग करने और स्वयं के विरूद्ध चल रहे भ्रष्टाचार के मुकदमों में ढिलाई देने की बात भी सम्मिलित थी।"[6] जब जयललिता की माँगें सरकार ने नहीं मानी तो उसने 14 अप्रैल, 1999 को अपना समर्थन वापस लेकर सरकार गिरा दी। इसी प्रकार, अक्टूबर 1999 में गठित जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार में नेशनल कांफ्रेंस के नेता डॉ० फारुक अब्दुल्ला शामिल हुए। जबकि इसी चुनाव में उन्होंने भाजपा के विपक्ष में प्रत्याशी खड़े किये और चुनाव प्रचार के दौरान भाजपा की कटु आ० फारुक अब्दुल्ला शामिल हुए। जबकि इसी चुनाव में उन्होंने भाजपा के विपक्ष में प्रत्याशी खड़े किये और चुनाव प्रचार के दौरान भाजपा की कटु आलोचना की। इससे पूर्व की सरकार में इन्हीं की पार्टी के एक सांसद सैफुद्दीन सोज ने भाजपा गठबंधन की सरकार के शक्ति परीक्षण वाले दिन विपरीत में मतदान किया और मात्र एक ही मत से सरकार गिर गयी।

अब, इस तरह के गठबंधनों को स्वार्थी व अवसरवादी की संज्ञा देने के सिवा और क्या कहा जा सकता है?

3. अस्थिर गठबंधन–

संघीय संविद सरकारों का अध्ययन करने से एक तथ्य यह भी सामने आया है कि सदन में किसी भी राजनीतिक दल का बहुमत न होने के कारण राजनीतिक दलों द्वारा गठबंधन करके सरकारों का गठन किया गया। यह स्थिति राज्यों में भी देखने को मिलती है, किन्तु यह तथ्य सामने आता है कि कोई भी गठबंधन एक–दो साल के अन्दर ही टूट गये, जिसके फलस्वरूप संविद सरकारें गिरीं और नयी बनीं। केन्द्र की प्रथम संविद सरकार में ही चौधरी चरण सिंह जनता दल से अलग हो गये और जिसके परिणाम स्वरूप 15 जुलाई, 1979 को मोरारजी देसाई सरकार को त्याग–पत्र हो गया। पिछली भाजपा नेतृत्व में बनी गठबंधन सरकार जयललिता द्वारा गठबंधन तोड़ देने से अल्पमत में आ गयी थी।

अस्थिर गठबंधनों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए 27 मार्च, 1998 को अपने मंत्रिमंडल के प्रति विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय दूसरे प्रधानमंत्रित्व काल के अवसर पर अपने पहले भाषण में प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने कहा था कि "मैं सदन के सामने इस बात को रखना चाहता हूँ कि विश्वासमत प्राप्त करने का सिलसिला एक वर्ष के बाद दूसरे वर्ष, तीसरे वर्ष, यह कब तक चलेगा? विश्वास का मत मुझे प्राप्त करना है इसलिए मैं यह प्रश्न खड़ा का रहा हूँ कि ऐसी बात नहीं है कि आज हर देखवासी के मन में, हर लोकतंत्र प्रेमी के मन में यह सवाल उठ रहा होगा और उठना भी चाहिए कि आखिर देश राजनैतिक अस्थिरता के भँवर में क्यों फँस गया है? जैसा मैंने कहा, यह सिलसिला बन्द होना चाहिए।"[7]

4. साम्यिक लाभ–

संघीय संविद सरकारों का गठन अपने साम्यिक लाभ के लिए ही राजनीतिक दलों द्वारा किया गया। वे सभी दल जो इन सरकारों के गठन में आंतरिक या बाह्य रूप से शामिल थे, उनका उद्देश्य किसी न किसी रूप में लाभ कमाना ही था। जब किसी दल को उसकी इच्छानुसार लाभ नहीं मिल पाया तो उसने गठबंधन सरकार से अपना नाता तोड़ लिया और सरकार गिराकर या जो पुनः वैकल्पिक सरकार का गठन किया या पुनः चुनाव करवाने का मार्गा प्रशस्त किया।

5. सिद्धान्तविहीन राजनीति–

इन संघीय संविद सरकारों की राजनीति किसी सिद्धांत विशेष पर आधारित नहीं थी और न ही इनका सरकार चलाने वाला कोई सर्व सम्मत से बनाया गया एजेण्डा था कभी तो गठबंधन चुनाव से पूर्व कर लिया गया तो कभी बाद में कई संघीय संविद सरकारें तो गठबंधन में शामिल राजनीतिक दलों के गैर–जिम्मेदाराना ढंग के कारण ही धराशयी हुई। कुछ सरकारों ने शासन चलाने के लिए एजेण्डे बनाये भी, किन्तु घटक दलों ने उनका पालन नहीं किया।

अतः यह कहा जा सकता है कि इन सरकारों की राजनीति सिद्धान्तविहीन ही थी। किसी भी घटक दल ने या समर्थन देने वाले दल ने समर्थन वापस लेते समय यह कभी नहीं सोचा था कि इसका देश की अर्थव्यवस्था और मतदाताओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यदि वे इसका जरा भी ध्यान रखते तो सरकारें इतनी शीघ्रता से बनती–बिगड़ती नहीं।

6. व्यक्तिगत हितों की प्राथमिकता–

इन सरकारों में शामिल सभी दलों के नेताओं ने सरकार में शामिल होते समय अपने व्यक्तिगत हितों को विशेष महत्व दिया। बहुत से दल तो धन कमाने के उद्देश्य से सरकारों में शामिल हुए। कई बार यह देखा गया कि अच्छी आमदनी वाला मंत्रालय न मिलने पर घटक दलों के नेता सरकार से नाराज हो जाते हैं और कभी–कभी तो वे आपस में झगड़ा करर बैठते हैं, जिसके फलस्वरूप अपनी ही सरकार गिरा लेते हैं।

वर्ष 1999 में अन्नाद्रमुक की नेता जलललिता ने भाजपा गठबंधन वाली सरकार से अपने व्यक्तिगत हितों की पूर्ति न होने पर ही समर्थन वापस लिया था। इससे पहले कांग्रेस अध्यक्ष श्री सीताराम केशरी ने देवगौड़ा सरकार से समर्थन इसलिए वापस लिया था कि वह अब स्वयं प्रधानमंत्री बनने की फिराक में थे, किन्तु सफल न हो सके। अन्ततः उन्हें गुजराल सरकार को समर्थन देना पड़ा।

7. क्षेत्रीय दलों की सक्रिय भूमिका–

संघीय संविद सरकारों के गठन में क्षेत्रीय दलों ने सक्रिय महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। क्योंकि इन चुनावों में राष्ट्रीय दलों की अपेक्षा क्षेत्रीय दल अधिक रहे हैं। वर्ष 1977 के चुनाव में और संविद सरकार के गठन व उसकी गतिविधियों को प्रभावित करने में इन दलों का विशेष योगदान रहा, क्योंकि ये बड़ी संख्या में थे। जैसा कि स्पष्ट है "इस चुनाव

के समय राष्ट्रीय दलों की संख्या पाँच थी– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (कांग्रेस), संगठन कांग्रेस, भारतीय लोकदल, भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी और मार्क्सवादी कम्युनिष्ट पार्टी। इनके अतिरिक्त राज्यीय दलों की संख्या 18 और गैर मान्यता प्राप्त पंजीकृत दलों की संख्या 39 थी। हालांकि निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट में गैर मान्यता प्राप्त पंजीकृत दलों की संख्या 40 लिखी हुई है निर्दलीय को मिलाकर।"[8]

इसी प्रकार सन् 1989 के चुनावों में राज्यीय दलों की 30 और गैर मान्यता प्राप्त पंजीकृत दलों की संख्या 89 थी।

वर्ष 1996 के चुनाव में 30 राज्यीय दल और 171 गैर मान्यता प्राप्त पंजीकृत दल थे। 12वीं लोकसभा चुनावों में 30 राज्य स्तरीय दल और 139 गैर मान्यता प्राप्त पंजीकृत दल भी थे। वर्ष 1999 के चुनाव में सात राष्ट्रीय दल अन्य क्षेत्रीय व गैर मान्यता प्राप्त दल थे। क्षेत्रीय दलों की भूमिका का अन्दाजा तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्तमान सत्तारूढ़ जनतांत्रिक गठबंधन सरकार 24 दलों से मिलकर बनी है, जिसमें भी कांग्रेस, समाजवादी पार्टी तथा जनता दल जैसे राष्ट्रीय प्रभावशाली दल विपक्ष में हैं।

वर्ष 1999 के चुनाव के बाद यद्यपि केन्द्र में भाजपा की गठबंधन वाली सरकार बन तो गयी, लेकिन "सरकार में शामिल सभी घटक अपनी क्षेत्रीय माँगों को सरकार से मनवाने के लिए दबाव बनाते रहे और बार–बार समर्थन वापसी की धमकी देते रहे। ऐसी स्थिति में सरकार को महत्वपूर्ण निर्णय लेने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा।"[9]

इससे स्पष्ट है कि संघीय संविद सरकारों के निर्माण व गतिविधियों पर क्षेत्रीय दलों का प्रभावशाली नियंत्रण रहा तथा इन दलों ने सक्रिय गठबंधन की राजनीति में भाग लिया।

11 अप्रैल, 1997 को देवगौड़ा सरकार गिराने के बाद कांग्रेस ने माँग रखी कि यदि संयुक्त मोर्चा अपना नेता बदल ले तोव ह अपना समर्थन जारी रखेगी। इसके बाद संयुक्त मोर्चा के नेताओं ने मोर्चा के नेता का चुनाव करने के लिए 19 अप्रैल, 1997 को विचार–विमर्श किया। इस नेता के चुनाव में वामपंथी दलों ने उस किसी भी नेता को प्रधानमंत्री पद के अयोग्य ठहराया जिसे वह प्रधानमंत्री के रूप में देखना न चाहते थे या जिस दल से उनका मन–मुटाव था। तत्कालीन रक्षा मंत्री मुलायम सिंह यादव की उम्मीदवारी कुछ समय पहले उनका सी०पी०आई० से मतभेद के कारण ही रद्द की दी गई।

8. कांग्रेस की महत्वपूर्ण भूमिका–

इन संविद सरकारों के गठन व उनके पतन में कांग्रेस ने सक्रिय महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। संघीय संविद सरकारोंकी अस्थिरता व अनिश्चितता सिर्फ कांग्रेस की ही देन रही है, क्योंकि प्रथम जनता पार्टी सरकार में उपप्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह को सरकार से अलग होने के लिए भड़काया, जिसके फलस्वरूप सरकार अल्पमत में आ गयी। बाद में चौधरी चरण सिंह को समर्थन देकर उनकी सरकार बना दी।

इसी तरह का रोल कांग्रेस ने वी०पी० सिंह चन्द्रशेखर देवगौड़ा और गुजराल सरकारों के साथ किया। इन सभी सरकारों को कांग्रेस ने बाहर से समर्थन दिया और जिस दिन इच्छा हुई उसी दिन उन्हें समर्थन वापस लेकर धराशायी करके या तो वैकल्पिक सरकार का गठन करवाया या फिर चुनाव।

वर्ष 1998 में गठित भाजपा गठबंधन वाली सरकार के प्रमुख घटक अन्नाद्रमुक नेता जयललिता को भड़काकर उसका समर्थन सरकार से वापस करवाकर सरकार गिरवा दी, जैसाकि निम्नलिखित वाक्य से स्पष्ट है– "1999 के अप्रैल के मध्य में उन्होंने सुब्रह्मण्यम स्वामी और सोनिया गाँधी के उत्साहवर्द्धन से प्रभावित होकर वाजपेय सरकार से समर्थन वापस ले लिया, जिससे सरकार अल्पमत में आ गयी।"[10] इसका कारण यह रहा कि सोनिया गाँधी अपने नेतृत्व में वैकल्पिक सरकार का गठन करना चाहती थी। इससे स्पष्ट है कि "मिश्रित सरकार बनाने में भले ही कांग्रेस की दिलचस्पी न रही हो लेकिन मिश्रित सरकारों के गिराने में कांग्रेस ने निःसंदेह सक्रिय भूमिका अदा की। उसने विरोधी राजनीतिक दलों की सरकारों को अनावृत करने के लिए समर्थन दिया और फिर कोई न कोई बहाना बनाकर समर्थन वापस ले लिया।"[11]

9. सत्ता में बने रहने की लालसा–

संघीय संविद सरकारों की अंतिम प्रवृत्ति यह देखने को मिली कि सत्तारूढ़ गठबंधन सत्ता में बने रहने का लालायित था। सत्ता में बने रहने के लिए प्रत्येक सरकार ने हर तरह के हथकंडे प्रयोग किये। उदाहरण के लिए– पहले कांग्रेस के चरण सिंह सरकर को बाहर से समर्थन दिया और कुछ दिनों बाद समर्थन वापस लेकर चौधरी चरण सिंह सरकार गिरा दी। वी०पी० सिंह सरकार को धराशायी करने के लिए कांग्रेस ने ही चन्द्रशेखर का साथ दिया। जनता दल का विखण्डन करवाकर चन्द्रशेखर से नया जनता दल (एस) नामक दल का संगठन करवाया और बाहरी समर्थन देकर सरकार बनवा दी। देवगौड़ा को हटाकर

नया नेता चुनने का प्रस्ताव जब कांग्रेस ने संयुक्त मोर्चा के नेताओं के सामने रखा तो संयुक्त मोर्चा सहमत हो गया। 11 अप्रैल, 1997 को देवगौड़ा सरकार गिरने के बाद 19 अप्रैल, 1997 को मोर्चा ने बिना किसी कारण जाने श्री इन्द्र कुमार गुजराल को अपना नया नेता चुन लिया। "यह घटनाएँ इस बात को सिद्ध करती है कि केवल सत्ता में बने रहने लालसा ही सम्पूर्ण राजनीति का केन्द्र बिन्दु रही।"[12]

10. गैर कांग्रेसी सरकारें–

"यह उल्लेखनीय है कि 1977 से अब तक जितनी साझा सरकारें बनीं वे गैर कांग्रेसी थीं। कांग्रेस ने स्वयं कभी किसी साझा सरकार का नेतृत्व नहीं किया। 1989 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को सबसे अधिक स्थान प्राप्त हुए किन्तु उसने सरकार बनाने से इंकार किया। 1996–99 के बीच भी कांग्रेस के नेतृत्व में मिश्रित सरकार बनाने की चर्चा तो अवश्य रही लेकिन कांग्रेस दल में साझा सरकार बनाने के प्रश्न पर मतैक्य न हो सका।"[13]

प्रभावः–

संघीय संविद सरकारों ने पिछले एक दशक से भी अधिक समय से देश की राजनीति पर अपना प्रभुत्व बनाये रखा है जिससे इनका आर्थिक, सामाजिक व राष्ट्रीय हर क्षेत्र में प्रभाव पड़ा है। इनके प्रभाव को निम्नवत व्यक्त किया जा सकता है।

1. अर्थ–व्यवस्था पर प्रभाव–

संघीय संविद सरकारों के गठन व पतन में देश के आर्थिक विकास बुरा प्रभाव पड़ा है। एक तो चुनाव के बाद जो भी गठबंधन हुए उनमें विपरीत विचारधाराओं वाले दल शामिल थे, जिनमें सामंजस्य बैठाये रखना गठबंधन के प्रमुख के लिए एक कठिन कार्य रहा। दूसरे, गठबंधनों में अधिकतर क्षेत्रीय दल शामिल हुए तो अपनी माँगों को पूरा करवाने के लिए सरकार पर आएदिन दबाव बनाते रहे। ऐसी स्थिति में देश में आर्थिक विकास करना या किसी कल्याणकारी योजना चलाना तो दूर रहा, सरकार का बहुमत बनाये रखना प्रत्येक संविद सरकार के लिए एक चुनौती बनकर रह गया। दुःख की बात तो यह है कि वर्तमान संविद सरकार को छोड़कर कोई भी पूर्व सरकार इस चुनौती का बखूबी सामना न कर पायी और परिणामस्वरूप धराशायी हो गयी।

संघीय संविद सरकारों की अनिश्चितता व अस्थिरता के कारण अर्थव्यवस्था पर पड़े दुष्परिणामों पर चिंता करते हुए अपनी सरकार के प्रति विश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय 27 मार्च, 1998 को दूसरे प्रधानमंत्रित्व काल के अवसर पर अपने पहले भाषण में श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लोकसभा में कहा था– "पिछले 18 महीने की अनिश्चितता ने, अस्थिरता ने किस तरह से देश को कठिनाईयों में डाला है, विशेषकर आर्थिक मोर्चे पर उसका उल्लेख मेरे सहयोगी वित्त मंत्री श्री यशवंत सिन्हा कर चुके हैं। स्थिति चिन्ताजनक है। उन्होंने स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। 18 महीने की अनिश्चितता के कारण अदूरदर्शी नीतियों के कारण अर्थव्यवस्था बुरी तरह से प्रभावित हुई है। खाद्यान्न का उत्पादन घटा है, निर्यात घटा है, सरकारी आमदनी घटी है, वित्तीय घाटा बढ़ा है। इसे रोकने के उपाय करने पड़ेंगे। इसके लिये केन्द्र में स्थिर, सक्षम और ईमानदार सरकार की जरूरत है।"[14]

भारत संसार का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, किन्तु राजनीतिक अस्थिरता ने केवल हमारी अर्थव्यवस्था को ही आहत नहीं किया है बल्कि सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था पर भी बुरा प्रभाव डाल रही है। फलस्वरूप हमारी विश्व में छवि प्रतिदिन धूमिल होती जा रही है।

2. मतदाताओं पर प्रभाव–

राजनीतिक अस्थिरता के कारण आज देश के प्रत्येक मतदाता के मन में संविद सरकारों के प्रति घृणा बढ़ती जा रही है। इसका कारण यह है कि आज आम आदमी जागरूक है, वह अपने नेताओं से यह उम्मीद करता है कि विधायिका या संसद में जाकर वह नेता उसकी समस्याओं का ध्यान रखते हुए देशहित को सर्वोपरता दे, लेकिन यथार्थ में स्थिति ठीक इसके विपरीत मिलती है। चुनाव प्रचार के दौरान जो नेता एक मतदाता के समक्ष हाथ जोड़ता फिरता है वह सत्ता में पहुँचकर उसे बिल्कुल भूज जाता है। उस समय उसका ध्यान 'येन केन प्रकारेण' स्वहित पूर्ति करता रहता है।

दूसरे, इन नेतागणों ने इन संविद सरकारों के दौरान मतदाताओं के दिलों पर एक के बाद एक इतने घाव किये हैं, जिनकी गिनती रख पाना मुश्किल होता जा रहा है। ये राजनेता संसद में पहुँचकर भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का बिल्कुल ध्यान नहीं रखते, अपने स्वार्थ के लिए तथा सत्तारूढ़ सरकार को गिराने के लिए हर तरह के हथकण्डे अपनाने से जरा भी नहीं चूकते। यहां तक कि ये संसद में जानवरों की तरह बहस के दौरान झगड़ते हुए देखे जाते हैं।

ये नेतागण किसी भी विधेयक पर बहस के दौरान इतना (संसद के दोनों सदनों में) कोलाहल करते हैं कि लोकसभा अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति को सदन की कार्यवाही रोकने के सिवा दूसरा विकल्प नजर न आता। ये बहस के दौरान ऐसी अभद्र भाषा व व्यवहार का परिचय शोर–शराबा के साथ सदन में देते हैं कि वैसा कोलाहल व अभद्रता गाँवों के नादान अनपढ़ बच्चों में झगड़ा करते समय देखने को नहीं मिलती।

इस तरह की अभद्रता का परिचय देने वाले दलों में कांग्रेस का सबसे बड़ा हाथ रहा है। विशेषकर कांग्रेस द्वारा सदन की कार्यवाही न चलने देना इसकी कौन सी सभ्यता का परिचय है? किसी विधेयक पर असहमति साधारणतया भी प्रकट की जा सकती है।

केन्द्र तथा राज्यों में वर्ष 1977 तक कांग्रेस का एकाधिकार रहा है, किन्तु विशेषकर पिछले दशक से केन्द्र के साथ–साथ राज्यों में भी उसे जो असफलता का मुँह देखना पड़ रहा है वह सिर्फ इसकी करतूतों के प्रति मतदाताओं की घृणा को उजागर करता है। मतदाता जानते हैं कि इसी कांग्रेस ने चौधरी चरण सिंह, चन्द्रशेखर, एच०डी० देवगौड़ा तथा गुजराल की संविद सरकारों को बाहर से समर्थन देकर बनवाया और खुद ही समर्थन वापस लेकर उन्हें गिराया। इसने यहां तक कि वी०पी० सिंह सरकार तथा वर्ष 1999 में भाजपा गठबंधन वाली सरकार के प्रमुख घटक चन्द्रशेखर और जयललिता को भड़का कर सरकारें गिरवा दीं।

इससे यह बात हर मतदाता के दिमाग में आती है कि आखिर यह कांग्रेस चाहती क्या है? यदि इसे सत्ता चाहिए, तो प्रत्येक मतदाता यह बात भलीभांति जानता है कि इस देश को जितनी क्षति कांग्रेस के शासन काल में हुई उतनी और किसी भी सरकार के शासन काल में नहीं।

वर्ष 1965 में जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया था और युद्ध विराम हो गया।

"22 सितम्बर, 1965 को दोनों देशों में युद्ध बन्द हो गया। भारत को युद्ध में 750 वर्ग मील भूमि मिली जबकि पाकिस्तान को 210 वर्ग मील भूमि मिली।"[15] किन्तु 10 जनवरी, 1966 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने ताशकंद समझौते में वह सब प्रदेश पाकिस्तान को वापस कर दिये जो देश ने अपार धर–जन की हानि उठाकर युद्ध में प्राप्त किये थे। जबकि वे प्रदेश भारत के ही अंग थे।

शिमला समझौता में भी तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने देशवासियों को निराशा ही प्रदान की। "शिमला समझौते के आलोचकों का कहना है कि यह भारत का पाकिस्तान के समक्ष आत्मसमर्पण था। भारत के सैनिकों ने जिसे युद्ध के मैदान में जीता था उसे भारत की कूटनीति ने शिमला में खो दिया। आलोचकों का कहना है कि कश्मीर समस्या का स्थायी हल ढूँढे बिना पाकिस्तान के 5.139 वर्ग मील क्षेत्र को लौटाना राजनीतिक चातुर्य नहीं कहा जा सकता।"[16]

10वीं लोकसभा समय पी०वी० नरसिंहराव शासन काल तो भारतीय राजनीति के इतिहास में घोटालों का शासन काल के नाम से विख्यात हो गया।

श्री राव के शासन काल के बारे में कहा जाता है कि "इसी लोकसभा के काल में स्वतंत्र भारत में सबसे अधिक घोटाले हुए। आरोप लगा कि सत्ताधारी दल ने अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए बतौर रिश्वत, सांसदों को मोटी रकम दी। सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायधीश न्यायमूर्ति वी० रामास्वामी पर लगाये गए महावियोग पर मतदान करते समय तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंह राव ने तटस्थ रहने का बटन दबाया। इतना ही नहीं, घोटालों में लिप्त रहने के कारण पहली बार ऐसा हुआ कि पदासीन प्रधानमंत्री को अदालतों के चक्कर लगाने पड़े।"[17] मतदाताओं द्वारा ऐसी हालत में सत्ता कांग्रेस को सौंपना कहां तक ठीक है, जिसका कोई सिद्धान्त ही नहीं है।

तीसरी बात, मतदाताओं को यह कचोटती है कि संसद के लोकप्रिय सदन के सदस्यों का चुनाव जब मतदाता करते हैं तो सरकार में निर्वाचित सदस्यों को ही शामिल किया जाये, किन्तु किसी रोड पर चलते हुए व्यस्क नागरिक को मंत्री बनाना कहां तक उचित है। इस तरह का प्रावधान संविधान निर्माताओं ने संविधान में लिखबद्ध करके सीधे मतदाताओं की भावनाओं का खुल्म–खुल्ला मजाक उड़ाया है। आखिर जब लोकतंत्र जनता का शासन है और जनता की मर्जी से चलाया जाता है तो एच०डी० देवगौड़ा जैसे व्यक्ति को, जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं था, देश की बागडोर पकड़ा देना कहां तक उचित था? क्या इसे जनता की मर्जी का शासन कहा जा सकता है? जनता की यह राय कभी नहीं थी कि कर्नाटक के मुख्यमंत्री रहे देवगौड़ा को भारत का प्रधानमंत्री बना दिया जाये। लिहाजा संविधान में इस सम्बन्ध में संशोधन किया जाना चाहिए।

चौथे, मतदाताओं के दिमाग में यह तथ्य भी पूरी तरह समा गया कि मुख्य रूप से कांग्रेस ने संविद सरकारों को गिराने में अहम् भूमिका निभाने के साथ वैकल्पिक सरकार

बनाने का कभी विचार नहीं किया। उसे इस बात का भी ध्यान नहीं रहा कि देश और मतदाता बार–बार चुनावों का बोझ धारण करने में समर्थ नहीं है। मतदाता यह भी समझ गये कि गठबंधन में शामिल राजनीतिक दलों का उद्देश्य देश का शासन चलाना व विकास करना नहीं बल्कि अपना स्वार्थ सिद्ध करना है।

सत्तारूढ़ भाजपा की भी खामियाँ मतदाताओं के गले नहीं उतरती। क्योंकि 13वीं लोकसभा के चुनावों में नेशनल कांफ्रेंस के प्रमुख डॉ० फारूख अब्दुल्ला ने चुनाव प्रचार में भाजपा की कटु आलोचना की, उसके विरूद्ध प्रत्याशी खड़े किये, इसके बावजूद भी जनतांत्रिक, गठबंधन में उनकी पार्टी को आन्तरिक रूप से सरकार में शामिल कर लिया गया। जबकि यह वही डॉ० फारूख अब्दुल्ला हैं, जिन्होंने पिछली भाजपा गठबंधन वाली सरकार को बाहर से समर्थन दिया था और शक्ति परीक्षण के दिन इन्हीं की पार्टी के सांसद सैफुद्दीन सोज ने भाजपा गठबंधन सरकार के विपक्ष में मतदान किया था। फलस्वरूप सरकार मात्र एक ही मत से गिर गयी।

इस तरह से भारतीय नेताओं के उत्तरदायित्व रहित व्यवहार से मतदाताओं में संघीय संविद सरकारों के प्रति उदासीनता और रोष बढ़ता ही जा रहा है।

3. अपव्ययता को बढ़ावा–

भारतीय राजनीतिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक 9 केन्द्र में संघीय सरकारें बनीं। इनमें से कोई भी पाँच वर्ष का अपना कार्यकाल एक पूरा न कर सकी। जबकि एक–एक लोकसभा के कार्यकाल में (11वीं लोकसभा तक) दो–दो प्रधानमंत्री रहे, किन्तु फिर भी पाँच वर्ष पूरे न हो सके। "11वीं लोकसभा में तीन व्यक्तियों अटल बिहारी वाजपेयी, एच०डी० देवगौड़ा, आई०के० गुजराल ने प्रधानमंत्री पद संभाला।"[18] फिर भी समय से पूर्व ही लोकसभा का विघटन कर दिया गया। अतः स्पष्ट है कि बार–बार चुनावों से अपव्ययता को बढ़ावा मिला है।

4. देश की एकता एवं अखण्डता पर प्रभाव–

देश पर इन संविद सरकारों की वजह से जल्दी–जल्दी चुनावों का बोझ लादा गया, जिससे एक तथ्य यह सामने आया कि देश की जनता में एकता की भावना पर ठेंस पहुंची है। चुनावों में सैकड़ों लोगों की मौतें हो जाती हैं, हजारों की दुश्मनी तैयार हो जाती है। परिणामस्वरूप अशान्ति एवं भय का वातावरण जन्म लेता है, जो देश की एकता एवं

अखण्डता के लिये हितकर नहीं है। आज देश इन्हीं चुनावों के कारण विभिन्न गुटों में बंटा हुआ है।

यहां तक कि प्रत्याशी मतदाताओं में जातिवाद, सम्प्रदायवाद व धर्मवाद जैसी संकीर्ण विचारधाराओं को पैदा करके अपना उल्लू तो तुरन्त सीधा कर लेते हैं, किन्तु वह यह नहीं समझते कि यही भावनाऐं इस देश को टुकड़ों में बांट देगी।

5. अन्तर्राष्ट्रीय जगत पर प्रभाव–

भारत में इस तरह की राजनीतिक उथला–पुथली अन्तर्राष्ट्रीय जगत में इसकी प्रतिष्ठा कम करती है, क्योंकि भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। अन्य लोकतंत्र राष्ट्र भारत से शिक्षा लेते हैं कि वे अपना शासन किस तरह चलायें, किन्तु जब शिक्षक राष्ट्र ही इस तरह की दुष्भावनाओं का शिकार होगा तो अन्य राष्ट्रों पर क्या असर पड़ेगा? हमारे नेताओं को इस बात पर भी विचार करना चाहिए।

संदर्भ

1. डॉ० पुखराज जैन एवं डॉ० बी०एल० फड़िया (2002)– "भारतीय शासन एवं राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ० 735
2. एस०एम० सईद (2001)– "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था", सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ, पृ० 301
3. डॉ० आर०एन० त्रिवेदी एवं डॉ० एम०पी० राय (2002)– "भारतीय सरकार एवं राजनीति", कालेज बुक डिपो, 83, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर–2 पृ० 514
4. डॉ० पुखराज जैन एवं डॉ० बी०एल० फड़िया (2002)– "फड़िया भारतीय शासन एवं राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ० 744
5. डॉ० पुखराज जैन एवं डॉ० बी०एल० फड़िया (2002)– "फड़िया भारतीय शासन एवं राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ० 744
6. एस०एम० सईद (2001)– "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था", सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ, पृ० 302
7. अटल बिहारी वाजपेयी (1999)– "मेरी संसदीय यात्रा (संसद में भाषण)", राष्ट्रीय थिति, प्रभात प्रकाशन 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–1999, पृ० 28

8. राजीव रंजन (2000)– "चुनाव, लोकसभा और राजनीति", ज्ञान गंगा, 205–सी चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृ० 92
9. डॉ० आर०एन० त्रिवेदी एवं डॉ० एम०पी० राय (2002)– "भारतीय सरकार एवं राजनीति", कॉलेज बुक डिपो, 83, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर–2, पृ० 517
10. राजीव रंजन (2000)– "चुनाव, लोकसभा और राजनीति", ज्ञान गंगा, 205–सी, चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृ० 175
11. एस०एम० सईद (2001)– "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था", सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ, पृ० 304
12. एस०एम० सईद (2001)– "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था", सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ, पृ० 303
13. एस०एम० सईद (2001)– "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था", सुलभ प्रकाशन, 17, अशोक मार्ग, लखनऊ, पृ० 304
14. अटल बिहारी वाजपेयी (1999)– "मेरी संसदीय यात्रा (संसद में भाषण)", राष्ट्रीय थिति, प्रभात प्रकाशन 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली–1999, पृ० 30
15. डॉ० बी०एल० फड़िया (2000)– "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ० 355
16. डॉ० बी०एल० फड़िया (2000)– "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ० 356
17. राजीव रंजन (2000)– "चुनाव, लोकसभा और राजनीति", ज्ञान गंगा, 205–सी चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृ० 107
18. डॉ० आर०एन० त्रिवेदी एवं डॉ० एम०पी० राय (2000)– "भारतीय सरकार एवं राजनीति", कॉलेज बुक डिपो, 83, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर–2, पृ० 516